❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ७ | गौराब्द ४७५, मास—वामन १८, वार–वासुदेव
रविवार, ३१ आषाढ़, सम्वत् २०१८, १६ जुलाई १९६१ | संख्या २

श्रीमुकुन्दमुक्तावली

[गतांकसे आगे]

इन्द्रनिवारं व्रजपतिवारं निर्धुतवारं हृतघनवारम् ।
रक्षित गोत्रं प्रीणितगोत्रं त्वां धृतगोत्रं नौमि सगोत्रम् ॥११॥

कंसमहीपतिहृद्गतशूलं संततसेवितयामुन कूलम् ।
वन्दे सुन्दरचन्द्रकचूलं त्वामहमखिलचराचरमूलम् ॥१२॥

मलयजरुचिरस्तनुजितमुदिरः पालितविबुधस्तोषितवसुधः ।
मामतिरसिकः केलिभिरधिकः सितसुभगरदः कृपयतु वरदः ॥१३॥

उररीकृतमुरलीरुतभङ्गं नवजलधर किरणोल्लसदङ्गम् ।
युवतिहृद धृतमदनतरङ्गं प्रणमत यामुनतटकृतरङ्गम् ॥१४॥

नवाम्भोदनीलं जगत्तोषिशीलं मुखासङ्गिवंशं शिखण्डावतंसम् ।
करालम्बिवेत्रं वराम्भोजनेत्रं धृतस्फीतगुंजं भजे लब्धकुन्जम् ॥१५॥

हृतक्षोणिभारं कृतक्लेशहारं जगद्गीतसारं महारत्नहारम् ।
मृदुश्यामकेशं लसद्धन्यवेशं कृपाभिर्नदेशं भजे वल्लवेशम् ॥१६॥

उल्लसद्दुकूलवीाससां तस्करस्तेजसा निर्जितप्रस्फुरद्भास्करः ।
पीनदोः स्तम्भयोरुल्लसच्चन्दनः पातु वः सर्वतो देवकीनन्दनः ॥१७॥

संसृतेस्तारकं तं गवां चारकं वेणुना मण्डितं कीडने पण्डितम् ।
धातुभिर्वेषिणं दानवद्वेषिणं चिन्तय स्वामिनं वल्लवीकामिनम् ॥१८॥

उपात्तकवलं परागशबलं सदेकशरणं सरोजचरणम् ।
अरिष्टदलनं विकृष्टललनं नमामि समहं सदैवतमहम् ॥१९॥

विहारसदनं मनोज्ञरदनं प्रणीतमदनं शशाङ्कवदनम् ।
उरःस्थकमलं यशोभिरमलं कात्तकमलं भजस्व समलम् ॥२०॥

(क्रमशः)

अनुवाद—

हे श्रीकृष्ण ! आपने ही तो अपने पिता व्रजराज (श्रीनन्दजी) को इन्द्रपूजासे रोका था तथा मख-भङ्गसे रुष्ट हुए इन्द्रका निवारण किया था और अपने संकल्पसे ही उनके द्वारा बरसायी हुई अपार जल-राशिका शोषण किया था; आपने ही बादलोंके द्वारा खड़ी की हुई मोटी दीवारको हटाया था और इस प्रकार व्रजकी रक्षा करके अपने कुलको आनन्दित किया था। उन व्रजेन्द्र नन्दन गिरिधारी श्रीकृष्णकी उनके कुलके सहित मैं स्तुति करता हूँ ॥११॥

आप महाबली राजा कंसके हृदयमें शूलकी भाँति खटकते रहते हैं तथा निरन्तर यमुना तटका ही सेवन किया करते हैं। आपके श्रीमस्तक पर सुन्दर मयूरपिच्छ सुशोभित रहता है। सम्पूर्ण चराचर जगत्के आदि कारण आपकी मैं वन्दना करता हूँ ॥१२॥

जिनका श्रीविग्रह चन्दनके लेपसे अत्यन्त सुशोभित है, जो अपनी अंगकान्तिसे नवीन जल-धरका भी तिरस्कार करनेवाले हैं, जिन्होंने देववृन्द-की रक्षाका व्रत ले रखा है और जो पृथ्वीके भाररूप दानवोंका संहार करके उसे सन्तुष्ट करते रहते हैं, जिनकी दन्तपंक्ति कुन्दके समान उज्ज्वल एवं कमनीय है और जो अपनी आनन्ददायिनी विविध लीलाओं-में अन्य सभी भगवत्स्वरूपोंसे आगे बढ़े हुए हैं, वे रसिक शिरोमणि वरदाता श्रीकृष्ण मुझपर कृपा करें ॥१३॥

जो मुरलीरवकी उन्मादकारी तरंगोंका सृजन करते रहते हैं, जिनके श्रीअङ्गोंसे नवीन जलधरकी-सी कान्ति फूटती रहती है, जो व्रजयुवतियोंके हृदयमें प्रेमकी लहरें उठाते रहते हैं और जो जमुनातट पर क्रीड़ा करते रहते हैं, उन भगवान श्याम सुन्दरको प्रणाम करो ॥१४॥

जिनका नवीन जलधरके समान श्यामवर्ण है, जो अपने मधुर स्वभाव एवं आचरणसे समस्त ब्रह्माण्ड को सन्तुष्ट करते रहते हैं, जिनके श्रीमुखसे वंशी कभी अलग नहीं होती, जो मयूरपिच्छका मुकुट धारण किये रहते हैं, जिनके कर कमलमें वेत्र दण्ड सुशोभित

है, जिनके नेत्र कमलके समान शोभायमान हैं, जो बड़े-बड़े गुञ्जाओंकी मालाएँ धारण किये रहते हैं और जो वृन्दावनके कुञ्जोंमें विहार करते रहते हैं, उन श्रीकृष्णका ही मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥१५॥

जो महाबलशाली दानवोंका संहार करके पृथ्वीका भार हरण करते हैं और प्रणत एवं साधुजनोंका क्लेश दूर करते हैं, जिनके बलका जगतमें यशोगान होता है, जो अमूल्य रत्नोंके हार धारण किये रहते हैं; जिनके केश अत्यन्त मृदु एवं श्याम हैं; जो वनवासियोंका-सा वेश धारण किये रहते हैं तथा कृपाके पारावार हैं, उन गोपेन्द्रकुमारका आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥१६॥

जो गोपबालाओंके चमकीले वस्त्रोंका हरण करते हैं तथा अपने दिव्य प्रकाशसे परम तेजोमय भास्करको भी पराजित करते हैं, जिनकी पीन भुजाओंमें चन्दनका लेप सुशोभित है, वे भगवान यशोदानन्दन आप लोगोंकी सब प्रकार रक्षा करें ॥१७॥

जो प्रणतजनोंको संसारसे तार देते हैं तथा गौओंके वृन्दको वन-वनमें घूमकर चराते हैं, वंशीसे विभूषित रहते हैं और विविध प्रकारकी क्रीड़ाओंमें अत्यन्त कुशल हैं, जो गैरिक धातुओंसे अपने श्रीअङ्गोंको मण्डित किये रहते हैं तथा दानवोंके शत्रु हैं, उन गोपीजनोंके प्रेमी जगदीश्वर श्रीकृष्णका ही चिन्तन किया करो ॥१८॥

जो हाथमें दही-भातका कौर लिये रहते हैं, जिनके श्रीअङ्ग रेणुसे चित्र-विचित्र बने रहते हैं, जो सज्जनोंके एकमात्र आश्रय हैं, जिनके पाद-पल्लव कमलके सदृश कोमल हैं, जो अरिष्टासुर एवं भक्तजनोंके अशुभका विनाश करनेवाले हैं, जो अपनी प्रेमभरी चेष्टाओंसे कामिनियोंका चित्त चुरानेवाले हैं, और जो सदा ही आनन्दसे पूर्ण रहते हैं, उन नन्दनन्दनको मैं सदैव प्रणाम करता हूँ ॥१९॥

जो विविध प्रकारकी लीलाओंके धाम हैं, जिनकी दन्त-पंक्ति बड़ी ही मनोहर है, जो व्रजयुवतियोंके हृदयमें प्रेमका संचार करते हैं, जिनका मुखमण्डल चन्द्रबिम्बके समान है, जिनके वक्षःस्थल पर स्वर्ण रेखाके रूपमें भगवती लक्ष्मी सदा निवास करती है, जिनकी निर्मल कीर्त्ति समस्त दिशाओंमें फैली हुई है और जो हाथमें लीला-कमल फिराते रहते हैं, उन श्रीकृष्णका ही सर्वतोभावेन भजन करो ॥२०॥

(क्रमशः)

प्रभु, तुम काहे दास बिसारे

प्रभु तुम काहे दास बिसारे ।
तुम बिन अपना सगा न कोई, खोज खोज मन हारे ॥
अँखियन नित ही नीर बहावै, सदा सजल दोउ तारे ।
हृदय कीर उड़न चहत है, दुख विरहा दोउ भारे ॥
पिउ पिउ करत इत उत धावे, प्रभु तेरो नाम पुकारे ।
'सुशील' श्याम कहा भई ऐसी, कहा अपुनपौ हारे ॥

—सुशीलचन्द्र त्रिपाठी, एम. ए., साहित्यरत्न

भगवानकी अप्रकट लीलाका रहस्य

तन्त्र-भागवतमें कहते हैं—'कृष्णावतार और रामावतार आदिमें परमेश्वर भगवानने शरीर धारण किया तथा शरीर त्याग किया—ऐसी बातें जो शास्त्रमें दिखलायी पड़ती हैं, वे केवल मूढ़ लोगोंकी बुद्धिके अनुसार ही पढ़ी जाती हैं। अर्थात् मूर्ख लोगोंके लिये ही हैं। वराह पुराणमें भी कहा गया है—'भगवान् या उनकी स्वरूपशक्तिकी हाड़-चाम और मांससे बनी कोई प्राकृत मूर्त्ति नहीं होती। महायोगी होनेके कारण अथवा योग ऐश्वर्यके प्रभावसे ही उनका वैसा अप्राकृत रूप है—केवल ऐसी बात नहीं है; बल्कि स्वयं साक्षात् ईश्वर होनेके कारण वे सत्य-स्वरूप, अच्युत और विभु हैं।

उन परमात्मारूपी भगवानके अवतारोंके शरीर आदि सब कुछ नित्य और शाश्वत हैं; साथ ही जड़ीय हेयता और उपादेयता—दोनों भावोंसे रहित एवं कदापि प्राकृत नहीं है। वे सर्वतोभावसे अखण्ड परमानन्दराशि (समष्टि), केवल चिन्मय एवं सभी अप्राकृत सर्व सद्गुणोंसे पूर्ण और परस्पर भेदरहित अर्थात् अभिन्न हैं। वे सभी सब गुणोंद्वारा परस्पर एक-दूसरेके निकट न्यूनताधिक्य शून्य हैं अर्थात् उनमें छोटे-बड़ेका भेद नहीं है। भगवानमें देह और देहीका भी भेद नहीं है। फिर ईश्वर विष्णुने शरीर ग्रहण किया—ऐसा जो सुना जाता है, उसे नट द्वारा अभिनयके लिये पहने हुए कुर्त्तेके हाथके समान समझना चाहिए। केवल अर्थात् अविमिश्र (शुद्ध) चिन्मय ऐश्वर्यके संयोग हेतु प्रकृतिके अतीतवस्तु ईश्वर-विष्णु अवतीर्ण और अन्तर्हित होकर भी "उनका यह रामरूप", "उनका यह कृष्णरूप" आदि उक्तियाँ उनके सम्बन्धमें प्रयुक्त होती हैं। कुर्म पुराण कहते हैं—'भगवान स्थूल भी नहीं हैं, अणु भी नहीं हैं, अथच वे सर्वतोभावेन स्थूल और अणु हैं। चिन्मय ऐश्वर्य-संयोग हेतु भगवान यद्यपि विरुद्धार्थ कहे जाते हैं, तथापि परमेश्वर तत्त्वमें किसी प्रकार भी जड़ीय दोषका आरोप करना उचित नहीं है। बाह्य दृष्टिसे उनमें आपात्-विरुद्ध गुणसमूह रहने पर भी वे गुण समूह परस्पर अचिन्त्यरूपमें अविरुद्ध (समन्वित) भावसे ही अवस्थित हैं—ऐसा समझना चाहिए।'

विष्णुधर्मोत्तरमें कहते हैं—'भगवान पुरुषोत्तमके ऐश्वर्यके कारण उनमें अप्राकृत समस्त गुणराशि विराजमान है। परन्तु उनमें किसी प्रकारका दोष नहीं है। क्योंकि वे परम वस्तु हैं। कोई-कोई निर्बोध व्यक्ति ऐसा कह उठते हैं कि उनमें गुण और दोष दोनों ही माया द्वारा प्राप्त हैं या आरोपित हैं। इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि भगद्वस्तुमें जब मायाका लेश भी नहीं है, तब माया सम्बन्धी गुण ही उनमें कैसे संभव हो सकते हैं? इसलिये भगवानकी गुण-राशि मायाद्वारा प्राप्त या आरोपित नहीं है; बल्कि उनके ऐश्वर्यसे ही उत्पन्न हैं। मायासे परे होनेके कारण ही भगवानको तत्त्वविद् पुरुष परम वस्तु मानते हैं।"

माया द्वारा मोहित कुछ अज्ञानी पुरुष ऐसा संशय करते हैं कि बहेलियेके बाणसे चोट खाकर श्रीकृष्णने अपना भौतिक शरीर त्याग दिया। इस संशयको दूर करनेके लिये सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवत और तदनुग आचार्योंने बड़े ही गूढ़ और सुसिद्धान्त-पूर्ण रहस्यका भेद खोला है।

श्रीमद्भागवत १।१४।८ श्लोकमें भीमसेनके प्रति युधिष्ठिर कह रहे हैं—

'यदात्मनोऽङ्गमाक्रीड' भगवानुत्सिसृक्षति।'

इस श्लोककी कुछ व्याख्याएँ इस प्रकार हैं—

'अंगं=पृथिवीम् । यदा त्यागादिरुच्येत् पृथिव्याद्यङ्गकल्पना । तदा ज्ञेया न हि स्वांगं कदाचिद्विष्णुरुत्सृजेत् ॥ —इति ब्रह्मतर्के ।'

अर्थात् 'अंग'-शब्दका अर्थ पृथ्वीसे है। ब्रह्मतर्कमें कहते हैं—शास्त्रोंमें भगवानके अन्तर्द्धान-प्रसङ्गमें जब त्याग-शब्दका प्रयोग होता है, तब पृथ्वी आदिको ही अंग समझना चाहिए; क्योंकि भगवान विष्णु अपने स्व-अंगका कभी भी परित्याग नहीं करते।' (श्रीमध्वाचार्य कृत भागवत-तात्पर्य)

'अक्रीड-शब्दसे—क्रीड़ा (लीला)-स्थान अर्थात् विश्व प्रपंचका बोध होता है और 'अङ्ग'-शब्दसे निजभूमि; 'क्योंकि पृथ्वी जिनका शरीर है'—इत्यादि शास्त्र वाक्य ही इस विषयमें प्रमाण हैं। (श्रीविजयध्वज) अथवा महाराज युधिष्ठिर कह रहे हैं—"क्या वह समय आ गया है, जब भगवान अपने क्रीड़ा-साधन अर्थात् लीला-संपादक 'अंग' अर्थात् मनुष्य नाट्य (मनुष्यकी भाँति प्रपंचमें परिलक्षित लीलानुकरण) को परित्याग करनेकी इच्छा करेंगे ?"
—(श्रीधरस्वामीपाद)

"अंग' अर्थात् स्वधामगमन हेतु प्राकृत विराट रूप।" (—क्रम सन्दर्भ)। (भागवत ११।१५।३४-३६ श्लोकमें शौनकादि मुनियोंके प्रति श्रीसूत गोस्वामीकी उक्ति—"यथाऽहरद्भुवो भारं तां ततुं विजहावजः। कण्टकं कण्टकेनेव द्वयञ्चापीशितुः समम्। यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद् यथा नटः। भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम्॥ यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीय सत्कथाः।"

अर्थात्—(जो नित्यसिद्ध पार्षद नहीं हैं, ऐसे साधारण मरणशील जीव) यादवोंसे भगवानकी विलक्षणता अर्थात् विशेषता न समझकर जो मन्दमति मूर्ख बहिर्मुख व्यक्ति दोनोंको 'समान' मानते हैं, उनके समीप श्रीसूत गोस्वामी इन दो श्लोकोंमें जीवसे भगवानकी विलक्षणताका स्पष्ट रूपसे निर्देश कर रहे हैं। 'यथा' शब्दसे (मायाद्वारा मोहित साधारण मरणशील जीवके समान) यादवरूपा तनु द्वारा पृथ्वीका भार (काँटा द्वारा काँटा निकालनेकी भाँति) हरण किये थे। 'यादवतनु' और 'भूभारतनु'—ये दोनों शरीर ही भगवानद्वारा संहार योग्य होनेके कारण एक समान हैं अर्थात् प्राकृत हैं।

वे मत्स्य आदि शरीरोंको जिस प्रकार धारण करते हैं या त्यागते हैं, उसे उदाहरण द्वारा बतला रहे हैं—जिस प्रकार नट अपने रूपमें स्थित रह कर ही एक रूप छोड़ता है और दूसरा रूप धारण करता है, उसी प्रकार भगवान् भी (प्राकृत लोगोंद्वारा देखे जाने वाले) शरीरका परित्याग कर स्वरूपमें ही अर्थात् अप्राकृत निज श्रीमूर्त्तिमें ही प्रगटित थे।

"भगवानका सशरीर ही वैकुण्ठमें आरोहण होनेके कारण भगवानने सशरीर ही पृथ्वीका परित्याग किया था।" (—श्रीधरस्वामीपाद)

"यहाँ 'तनु', 'रूप' और 'कलेवर'—इन तीन शब्दोंसे भगवानके भू-भार हरणकी इच्छारूप लक्षणविशिष्ट और देवादिपालनकी इच्छारूप लक्षणविशिष्ट दोनों प्रकारके भावोंको ही बतलाया गया है ('देह' को नहीं बतलाया गया है।)। जैसे श्रीमद्भागवत ३।२०।२८,३९,४१,४६,४७ आदि श्लोकोंमें उन शब्दोंसे ब्रह्माके भावका ही लक्ष्य किया गया है (देहका नहीं)। यदि वहाँ ब्रह्माके सम्बन्धमें उस प्रकार व्याख्या की जायगी, तो यहाँ पर श्रीभगवानके सम्बन्धमें भी वैसी ही व्याख्या करनी सुसङ्गत है। इसीलिये भगवानमें यह भाव (स्वरूपगत 'वास्तव' नहीं है, बल्कि) आभासरूप होनेके कारण कण्टकसे कण्टकका दृष्टान्त सुसंगत हुआ है (अर्थात् काँटासे चुभे हुए काँटेको बाहर कर लेनेवाले व्यक्तिके लिये दोनों ही काँटे समान होते हैं, वह दोनोंको फेंक देता है, उसी प्रकार ईश्वरके लिये भूभारतनु अर्थात् भूभार स्वरूप असुरगण या विराट रूप विश्व प्रपंच एवं प्राकृत

मर्त्यजीव सदृश यादवतनु—दोनों ही समान हैं)। इस विषयमें विस्तृत विचारके लिये 'परमात्म-सन्दर्भ' देखिये।

मत्स्यादि अवतारमें 'मत्स्यादिरूप' शब्दसे दैत्य-वधेच्छामय भावका लक्ष्य किया गया है। जिस प्रकार कोई अभिनेता अपने एक ही वेशमें रह कर भी अपनी भाव-भङ्गी और कथानकोंके द्वारा कभी नायकका पार्ट करता है, तो कभी नायिकाका और कभी दूती आदिका, इसके लिये केवल वह अपने भावोंका परिवर्तन करता है; उसी प्रकार ईश्वरके विषयमें समझना चाहिए। अथवा "मैं योगमाया द्वारा ढँका रह कर सबके सामने प्रकट नहीं होता।" —इस गीता-वाणी (७।२५) से यह स्पष्ट है कि भगवान श्रीजनार्दन भक्तिके बलसे ही योगियोंद्वारा देखे जाते हैं, वे अभक्ति मार्गमें कभी भी दिखलायी नहीं पड़ते। "क्रोध और मात्सर्य द्वारा कोई भी उनका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है।"—इस पद्मोत्तर खण्डके विचारसे एवं "मल्ल योद्धाओंकी दृष्टिमें कृष्ण वज्रस्वरूप दिखलायी पड़े"—इस भागवतीय सिद्धान्त वाक्यके अनुसार असुरोंके सामने भगवानकी जो मूर्त्ति दिखाई पड़ती है, वह उनका अपना स्वरूप नहीं है, बल्कि वह स्वरूप 'मायाद्वारा कल्पित होता है। भगवानका स्वरूप दर्शन करनेसे प्राकृत द्वेष-भाव दूर हो जाता है। अतएव असुर-लोगोंकी दृष्टिमें भगवानने जिस शरीर द्वारा पृथ्वीके भार स्वरूप असुरोंका संहार किया था, उसी शरीरको भगवानने त्याग किया था और फिर उस शरीरको उनके सामने प्रकट नहीं किया। दूसरी ओर भक्ति द्वारा दिखलायी पड़नेवाला जो भगवानका शरीर होता है, वह नित्यसिद्ध है; इसीलिये उसके लिये 'अज' शब्दका प्रयोग हुआ है। अतः कोई नट या जादूगर जिस प्रकार अपने स्वरूपमें स्थित रह कर ही नाना प्रकारके रूपोंको धारण करता है और त्याग करता है, उसी प्रकार पृथ्वीके भार स्वरूप असुरोंका विनाश कर अज और सनातन भगवान् स्वरूपमें स्थित रह कर ही अपने उस प्राकृत रूपका अर्थात जिस कलेवर द्वारा असुरोंका विनाश किया था, उस कलेवरका त्याग किये थे। गीता ७।२५ श्लोकमें योगमाया-समावृतः'-पदका अर्थ है—साँपकी केंचुल-की भाँति माया द्वारा रचित देहाभास द्वारा भली-भाँति आवृत अर्थात् आच्छादित।'

यहाँ, (पृथ्वी) त्याग लीला भगवानके स्व-शरीर द्वारा ही सम्पादित हुई थी (अर्थात् 'स्वतन्वा'—यह पद तृतीया विभक्ति करण-कारकमें बना है)। उनके स्वतनु अर्थात् अपने शरीरके साथ पृथ्वीका (शरीर. को पृथ्वी पर छोड़ कर) त्याग नहीं हुआ था (अर्थात् स्वतन्वा—यह तृतीया विभक्ति 'सह' अर्थमें व्यवहृत नहीं है),—इसी प्रकार व्याख्या करनी होगी, क्योंकि 'सह' शब्द मूल श्लोकमें न रहनेके कारण, अकारण ही (अर्थ सङ्गतिका नाश करके) अध्याहार करनेसे अध्याहार्य-शब्दका ही गौरव प्रदर्शित होता है; विशेषतः 'सह' आदि शब्द-निष्पन्न उपपद विभक्तिसे कर्त्तृ-कर्म-करण आदि कारकनिष्पन्न विभक्ति अधिकतर बलवान होता है, यह व्याकरण-न्याय भी इस विषयमें प्रमाण है। (—क्रमसन्दर्भ और कृष्ण-सन्दर्भ १०६ संख्या)

यादवोंकी अन्तिम दशाका वर्णन सुनकर शौनक आदि मुनियोंको अत्यन्त दुःखित और अधीर देख कर सूत गोस्वामी इन दो श्लोकों द्वारा उस लीलाका का गूढ़-रहस्य बतलाकर उनको सान्त्वना दे रहे हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार किसी अङ्गमें एक काँटा चुभ जाय, तो उसको दूसरे एक काँटेसे निकाला जाता है और कार्य होने पर उन दोनों काँटोंको फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार जिन यादव आदि शरीरों-से भगवानने अपनी एकपादभूता पृथ्वीका भार हरण किया था, उन शरीरोंका भी उन्होंने त्याग किया था। जिस प्रकार कोई अपने वस्त्रोंका त्याग करता है, उसी प्रकार भगवानने अपने संगसे यादवरूपी शरीरोंका त्याग कर दिया। परन्तु जिस श्रीअङ्ग द्वारा भगवान

नित्य क्रीड़ा करते हैं, उसका त्याग उन्होंने नहीं किया। अतएव भगवानके अंशावतरणके समय जो देवतागण नित्य विराजमान रहनेवाले यादवोंमें प्रविष्ट हुए थे, भगवानने उन्हीं देवताओंको नित्य यादवोंसे निकाल कर प्रभासमें भेज दिया था और अपनी मायाके बलसे उनका शरीर त्याग दिखला कर उन सबको देवताओंके रूपमें बदल कर स्वर्गमें भेज दिया था—एकादश स्कन्धका अनुशीलन करनेसे ऐसा जाना जाता है।

श्रीकृष्णकी नित्यलीलाके पार्षद यादवगण सांसारिक लोगोंसे, अदृश्य रहकर श्रीकृष्णके साथ द्वारकापुरीमें ही पहलेकी भाँति अप्रकट लीलामें क्रीड़ा किया करते हैं—ऐसा श्रीभागवतामृतमें वर्णन किये गये सिद्धान्तोंसे जानना आवश्यक है। 'भूभारतनु, और 'यादवतनु' अर्थात् असुरगण और यादवरूपों में देवगण—दोनोंही परमेश्वरके निकट समान हैं। फिर भी भूभार-स्वरूप असुरोंकी अपेक्षा भूभार हरणकारी यादवोंकी श्रेष्ठता स्वीकृत है। पैरोंमें चुभे हुए काँटोंकी अपेक्षा उन्हें बाहर निकालनेवाले काँटोंकी उपकारिता और श्रेष्ठता स्वतःसिद्ध है।

ऐन्द्रजालिक नटकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णने जो झूठ-मूठ ही स्वदेह-त्याग लीलाका अभिनय किया था, उसका वर्णन इन श्लोकोंमें करते हैं। भावार्थ यह है कि भगवान् रूप या तनु धारण (प्रकट) भी करते हैं और परित्याग (अप्रकट) भी करते हैं (अर्थात् देह-धारण और देह-त्यागका भानमात्र करते हैं), वास्तवमें वे रूप या तनु धारण कर उसका त्याग नहीं करते। इससे यह सिद्ध होता है कि तनुत्याग (अप्रकट) के समय भी उनका अप्राकृत तनु (शरीर) वर्तमान ही रहता है। यदि कोई शंका करे कि इसे कैसे माना जा सकता है ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं—नट अर्थात् ऐन्द्रजालिक जिस प्रकार अपने शरीरको काटकर, जलाकर अथवा मूर्च्छा आदिके द्वारा उसका त्याग कर देता है और दर्शकोंको ऐसा विश्वास करा लेता है मानो वास्तवमें ही उसने अपना शरीर त्याग कर दिया है, परन्तु वास्तवमें वह जीवित ही रहता है, अपना शरीर धारण किये हुए ही रहता है, उसी प्रकार भगवानका भी मत्स्यादि शरीर धारण ही वास्तविक सत्य है और शरीर-त्याग ही वास्तवमें मिथ्या है,—यही भावार्थ है। जिस प्रकार भगवान् मत्स्य आदि अपने आगन्तुक शरीरोंका त्याग करते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकृत कलेवर द्वारा वे भू-भारका हरण किये थे, उसीका उन्होंने परित्याग किया था। अतएव भगवान श्रीकृष्णका शरीर-त्यागका सारा व्यापार ही मोहजनक और मिथ्या होनेके कारण नराकृति परब्रह्म होकर भी, वे नटरूप नर-देह त्यागका अभिनय मात्र करते हैं, तत्त्वतः नहीं करते। क्योंकि उनका श्रीविग्रह भौतिक नहीं होता, इसीलिये उसका विनाश भी नहीं होता। पांच भौतिक शरीरका ही विनाश होता है, पांचभौतिकसे परे अप्राकृत शरीरका विनाश नहीं होता। जैसे, महाभारतमें कहते हैं—इन परमात्मा कृष्णके शरीरमें प्राकृत पंचभूतराशिकी समष्टि या स्थिति नहीं है।' बृहद्विष्णुपुराणमें भी कहते हैं—"जो व्यक्ति परमात्मा श्रीकृष्णके शरीरको 'भौतिक' मानता है, सब प्रकारकी श्रौत या स्मार्त विधानोंसे उसका बहिष्कार कर देना ही कर्त्तव्य है। उसका मुख दर्शन करने पर वस्त्रके साथ ही स्नान करना कर्त्तव्य है।" वैशम्पायन द्वारा कहे गये विष्णुसहस्रनाममें भी ऐसा कहा गया है—'अमृत जिनका अंश है वे स्वयं ही अमृत-तनु हैं।'

श्रीकृष्णके शरीरत्याग-कार्यको अवास्तविक और मिथ्या बतलाते हुए यह श्लोक कह रहे हैं। यहाँ श्रीधर स्वामी-पादकी टीका और श्रीजीवपादकी सन्दर्भ-व्याख्या द्रष्टव्य है (—श्रीविश्वनाथ)।

—"आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम्।"

यह श्लोक श्रीमद्भागवत ३।२।११ का है, जो

श्रीउद्धव द्वारा विदुरजीके प्रति कहा गया है। इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार है—

"स्वबिम्ब अर्थात् अपनी श्रीमूर्तिको अबतक दिखलाकर भगवान लोगोंकी आँखोंको ढककर अन्तर्द्धान हो गये, क्योंकि वैसा कोई दूसरा दर्शन योग्य पदार्थ नहीं था।" (—श्रीधरस्वामी)।

"वे नेत्रोंके भी नेत्र हैं,—इस श्रुतिमन्त्रके अनुसार लोकलोचन रूप स्वबिम्ब अर्थात् अपनी मूर्त्ति को ग्रहण कर भगवान् (अन्तर्द्धान हुए थे)। जैसे महाभारत मौषलपर्वमें भी कहते हैं—

"कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः।
मोचयित्वा तनुं कृष्णः प्राप्तः स्वस्थानमुत्तमम्॥"

"यहाँ 'मोचयित्वा' (मोचन कराकर) का प्रयोग "भूभार-अवतरण कार्यसे छुड़ा करके अर्थात् अवसर प्रदान करके"—इस अर्थमें हुआ है, न कि भू-भार अवतरणकार्यसे मुक्त होकर—इस अर्थमें प्रयोग हुआ है—"क्रमसन्दर्भ।

"सबिम्ब' शब्दसे सच्चिदानन्दलक्षण स्वरूप और उनकी प्रतिमा दोनोंका बोध होता है। 'यस्तु'-पदके अन्तर्गत 'तु' शब्द 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे'—इत्यादि श्रुतियोंको सूचित कर रहा है। (—विजयध्वजतीर्थ।

यहाँ 'लोगोंके सामने अपनी श्रीमूर्ति प्रदर्शित या प्रकटित कर और फिर उसे लेकर ही अन्तर्द्धान हो गये' इस वाक्यके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरीरका परित्याग कर अन्तर्हित हुए—विरुद्धवादियों के इस विचारकी भ्रान्ति सिद्ध हुई। अगले श्लोकों में निज मूर्त्तिका विशेषण-प्रयोगके कारण श्रीकृष्ण नर-वपु त्यागकर तथा दिव्य शरीर धारण कर महाराज युधिष्ठरके राससूय यज्ञमें पधारे थे—इस वाक्य से जो लोग कृष्णका नर-शरीर नहीं मानते, उनका विचार गलत सिद्ध हुआ। फिर 'अपनी श्रीमूर्त्ति दिखला कर उसे लेकर ही अन्तर्द्धान हो गए'—इसके द्वारा प्रदर्शन और अन्तर्द्धान—दोनों लीलाओंमें उनकी इच्छा ही कारण है। अतएव जो लोग भगवानको कर्मके अधीन मानते हैं, उनका मत भी गलत सिद्ध हुआ।' (—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)। श्रीमद्भागवत ३।२।१७ श्लोककी मध्वाचार्यने भागवत तात्पर्यमें कहा है।

'आनन्दरूपं दृष्ट्वापि लोको भौतिकमेव तु।
मन्यते विष्णुरूपं य अहो भ्रान्तिर्बदुस्थिता॥

—इति स्कान्दे अर्थात् स्कन्दपुराण कहते हैं कि माया-रूढ़ अर्थात् मयामोहित मनुष्य विष्णुके (सत्, चित् और) आनन्दमयरूपको देख कर भी उसे भौतिक समझते हैं,—अहो! लोगोंके विचार कैसे भ्रान्त हैं!

श्रीमद्भागवत ३।४।२८-२९ श्लोकोंमें परीक्षित और शुकदेवका प्रश्नोत्तर—"हरिरपि तत्याज आकृतिं त्र्यधीशः" एवं 'त्यक्त्वा देहमचिन्तयत्', इन दोनों श्लोकोंकी व्याख्या इस प्रकार है—

आकृति-शब्दसे पृथ्वीका बोध होता है; क्योंकि शरीर, आकृति, देह, कु, पृथ्वी और मही-ये पर्याय वाची शब्द हैं। स्कन्दपुराण कहते हैं—'श्रीहरिका देह-त्याग'—इससे पृथ्वी-त्याग ही कहा गया है अर्थात् सदेह पृथ्वीको छोड़कर चले गये—इसीका बोध होता है। वे नित्यानन्द स्वरूप हैं, अतएव इसका कोई दूसरा अर्थ ही नहीं किया जा सकता है। भगवान विष्णु स्वयं परम ज्ञानरूप होकर भी असज्जनों को मोहित करनेके लिये नटकी भाँति अपने जैसा एक मराहुआ शरीर या शव दिखलाये थे।'—(श्रीमध्वाचार्यकृत भागवत-तात्पर्य)।

'आकृति'-शब्दसे पृथ्वी और 'देह' शब्दसे पृथ्वी का बोध होता है; 'यस्य पृथ्वी शरीरम्'—यह श्रुतिमन्त्र इसका प्रमाण है।'—(श्रीविजयध्वज)।

'आकृति'-शब्दका अर्थ मनुष्य-आकारसे है' (--श्रीधरस्वामिपाद)।

'निधन'-शब्दसे अत्यन्त उत्तम धन-स्वरूप श्रीकृष्णके नित्यलीलाधामका तात्पर्य है। पूर्ववर्ती २६ वें श्लोकमें 'मर्त्यलोकं जिहासता' (मर्त्यलोकपरित्यागाभिलाषि-भगवत् कर्त्तृक) एवं परवर्ती ३० वें श्लोकमें-'अतरमाल्लोकादूपरते' (भगवान्के इस मर्त्यलोकसे उपरत हाने पर)—इस दोनों वचनोंके अनुसार 'आकृति' शब्दसे विराट आकारका बोध होता है। इस विषयमें विस्तारपूर्वक जाननेके लिये श्रीकृष्ण-सन्दर्भ ९३ संख्या द्रष्टव्य है।

इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार है। श्रीहरिने आ (भलीप्रकारसे)+कृति (प्रपंचमें उदित होनेवाली चेष्टा या लीला) का त्याग अर्थात् समाप्त किया। 'त्यक्तन'-शब्दसे (त्यज् धातुका दानके अर्थमें व्यवहार हेतु) स्वांश नारायणको पुनः वैकुण्ठमें भेजकर ब्रह्मा आदि भक्तोंका पालन करनेके लिये दान करने की इच्छा करके' इस अर्थका तात्पर्य है। सन्दर्भमें श्रीजीव गोस्वामीने 'देह-शब्दका अर्थ 'भगवानका विराट आकार अर्थात् पृथ्वी' किया है। (—श्रीविश्वनाथ)।

श्रीमद्भागवत ११।३०।२ श्लोकमें श्रीशुकदेवके प्रति परीक्षित महाराजकी उक्ति 'तनुं स कथमत्यजत्' श्लोकांशकी श्रीमध्वाचार्यकी व्याख्या इस प्रकार है—"तनुमत्यजत्—अतिशयेन अहरत्--(अज् हरणे इति धातोः) भूलोकात् स्वर्गलोकं प्रत्यहरदित्यर्थः।" अर्थात् भगवान्ने अपने तनु (शरीर को) अति-अजत् = अतिशयरूपसे अन्तर्द्धान कराये थे,--क्योंकि अज् धातुका यहाँ हरण-अर्थमें ही प्रयोग हुआ है; अर्थात् भगवान्ने अपने तनुको भूलोकसे स्वर्गलोक-की ओर (गोलोककी ओर) अपहृत या अन्तर्द्धान किया।

(क्रमशः)

--जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

चित नहीं छबि तिहारी

ओ प्रभु निरखो दशा हमारी।
छीण भयो मम चाम मांस तनु, खींचत बोझा भारी।
निशदिन धावत विषयन माहीं, चित नहीं छबि तिहारी॥
पालन पोषण धावन खावन, हौं सुध दई बिसारी।
कबहुक नहीं उर अन्तर लखकत प्यारे चितवन प्यारी॥
करो दया प्रभु मोहि मग देओ, काहे सुधी बिसारी।
चाहत मन विषयन माला तजि, भोग अमित सुखकारी॥
सेवा अपने प्राण प्रभु की करूँ चरण अघहारी।
वृषभानुनन्दिनीदास विनय प्रभु करत चरण बलहारी॥

—श्रीसत्ययाल ब्रह्मचारी

नामाश्रयका फल

पूर्णतम व्रजधाममें श्रीकृष्णकी अष्टकालीय लीला देदीप्यमान है। मधुर रसाश्रित शुद्ध भक्त अप्राकृत देहमें उसका अनुभव करते हैं। उस अष्टकालीय लीलामें संभोग और विप्रलंभ भेदसे दो प्रकारके रस हैं। श्रीमती राधा और उनकी परिचारिकाएँ उन दोनों प्रकारके रसोंका आस्वादन करती हैं। विप्रलंभके अभावमें संभोगकी स्फूरणा नहीं होती। इसलिये अष्टकालीय लीलामें समय-समय पर पूर्वराग और विरह आदि भाव हुआ करते हैं। वह माधुर्य नये-नये रूपमें प्रकट होता है, एक ही समय समस्त भावोंका उदय नहीं होता।

शुद्धनाम-परायण भक्त पुरुष नाम-रसका आस्वादन करते समय जब भक्तिके स्रोतमें बहने लगता है, उस समय उसके अप्राकृत शरीरमें समस्त तत्त्व उद्दीपित होते हैं। व्रजधाममें श्रीराधा-कृष्ण जिस समय जो लीला प्रकट करते हैं, शुद्ध भक्त नामके प्रभावसे अनायास उसका दर्शन करता है। इस विषयमें शास्त्र-युक्ति या शास्त्र-सिद्धान्त कुछ भी सहायता नहीं कर सकते हैं। एक मात्र सद्गुरुका आश्रय लेकर निरपराध रह कर नामका आश्रय लेने पर थोड़े दिनों में ही अनर्थोंसे छुटकारा प्राप्त होकर श्रीनाममें निष्ठा होने पर सम्पूर्ण सिद्धि होती है। नामापराध रहने पर नाम का फल नहीं होता। उसी प्रकार हृदय-दौर्बल्य और असत् तृष्णा दूर नहीं होनेसे भक्ति निष्ठा नहीं होती। जो लोग शुद्धभक्ति तत्त्वको पानेके लिये प्रयत्नशील हैं, वे इस बात का सबसे पहले प्रयत्न करेंगे कि अनर्थ-समूहका किस प्रकार शीघ्रसे शीघ्र ध्वंश किया जाय।

अनर्थ एक दिनमें नहीं जाते। निरापराध होकर नाम करनेके लिये प्रयत्न करने पर क्रमशः वे दूर होते हैं। अनर्थ समूह ही भजनके प्रतिकूल हैं। अनर्थ रहते-रहते किसी प्रकार भजनमें उन्नति नहीं हो सकती है। अनर्थ चार हैं—स्वरूप-भ्रम, असत् तृष्णा, हृदयकी दुर्बलता और अपराध, ये चारों अनर्थ एक साथ दूर होने पर श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला क्रमोन्नतिके अनुसार प्राप्त होते हैं। शुद्ध नाम उदित होने पर वह कृष्णनाम ही रूप होकर दर्शन देते हैं; वह रूप श्याम वर्ण हैं। क्रमानुसार गुणका उदय होने पर श्रीगोपीवल्लभके असाधारण गुण उद्दीपित होते हैं। सिद्धि हो जाने पर लीलाका दर्शन होता है तथा लीला-दर्शनके फल-स्वरूप व्रज-गोपियोंकी परिचारिकाओंकी श्रेणीमें आया जा सकता है, और श्रीराधा-कृष्णके अष्टकालीय सेवा-सुखका आस्वादन किया जा सकता है। निष्कपट होकर सद्गुरुके निकटसे श्रीनाम प्राप्त होकर एकान्त रूपसे नामका आश्रय करनेसे थोड़े ही दिनोंमें सर्व-सिद्धि होती है और फिर जन्म-मृत्युके चक्करसे सदा के लिये छुटकारा मिल जाता है। चिन्मय नामानन्दसे चित्तमें विचित्र भाव उदय होते हैं। उस विमल आनन्दके सामने कर्मयोग-ध्यान आदि कुछ भी नहीं हैं। नामसे बढ़ कर और कोई भी श्रेष्ठ वस्तु नहीं है। श्रीहरिनाम सर्वश्रेष्ठ हैं। वे शुद्ध भक्तोंके प्राण हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहते हैं—

> कलियुगे युगधर्म नामेर प्रचार।
> तथि लागि पीत वर्ण चैतन्यावतार॥

गौरावतारके निगूढ़ भाव आन्तर और बाह्य भेद से दो प्रकारके होते हैं। अन्दरमें व्रज-भाव, पारकीय रस, नव-नटवर गोपवेश, गलेमें वनमाला, पीताम्बर-धारी, मुरलीवादन इत्यादि। बाहरमें राधा-भाव-कान्ति, प्रेमभक्तिका आस्वादन करते हुए जीवोंको शिक्षा देना और जगद्गुरुके रूपमें श्रीनाम प्रचार।

उसी नामसे अन्तर्भाव प्रकाशकर मधुर नामद्वारा मधुर रस वितरण करते हैं। उसे शुद्ध भक्त महाजनों ने प्रेम-नेत्रोंसे दर्शन कर वर्णन किया है। व्रज-रस एक समुद्र है। उस रस-समुद्रका एक बिन्दु पाकर भी जीव अपनेको बिलकुल भूल जाते हैं। वे संसार में रह करके भी व्रज-माधुरीका आस्वादन करते हुए चित्देह द्वारा समस्त सुखानुभव कर छन्नावतार (श्रीगौरावतार) का निगूढ़ भाव जान लेते हैं। श्रीधाम माहात्म्यमें लिखा है—

दास्य परिपक्के यबे जीवेर हृदये।
श्रीमधुर रस उदे मूर्त्तिमान हये॥
से समय भजनीय तत्त्व गौरहरि।
राधाकृष्णरूप हये व्रजे अवतरि॥
नित्यलीला-रसे सेई भक्तके डूबाय।
राधाकृष्ण-नित्यलीला व्रजधाम पाय॥

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाके अनुसार जो नामका आश्रय लेते हैं, वे शीघ्र ही ऐसा देख पाते हैं कि कृष्णनाम ही अन्तमें प्रेमके रूपमें प्रकाशित होते हैं। समस्त प्रकारके रसोंमें पारकीय मधुर रस सर्वश्रेष्ठ हैं। इस रसमें माधुर्य अधिक होनेके कारण मधुर रस नाममें प्रकाशित हुआ है।

—जगद्गुरु श्रीभक्ति विनोद ठाकुर

रूसी भाई और उनकी स्पुटनिक

कुछ दिन हुए श्रीगुरुभिक नामक एक सुपरिचित रूसी भाईने अपनी "सोवियट लैण्ड" नामक पत्रिका-में एक लेख प्रकाशित किया था, जिसका शीर्षक था—"हम विज्ञान द्वारा मनुष्यको अमर बना देंगे"। उस लेखको पढ़ कर मैंने उक्त रूसी भाईको एक पत्र लिखा था जिसका तात्पर्य नीचे दिया जा रहा है—

आपने विज्ञानकी सहायतासे मनुष्यको अमर बनानेके सम्बन्धमें जो लेख प्रकाशित किया है, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद दे रहा हूँ। परन्तु 'भगवान् नामक किसी व्यक्तिका अस्तित्व नहीं है, जो कुछ है, वह सब विज्ञान ही है'—आपके इस विचार के साथ सहमत नहीं हो सका। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि वास्तविक विज्ञानकी उन्नति होने पर मनुष्य अवश्य ही अमर हो जायगा। परन्तु उसके साथ ही साथ मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि वैज्ञानिक उन्नतिके साथ-साथ मनुष्य जाति भगवानको भी अवश्य अवश्य स्वीकार कर लेगी। इसका कारण यह है कि ज्ञान और विज्ञानकी अन्तिम दौड़ भगवानको जानने तक ही है। ज्ञान-विज्ञान जब तक भगवानका परिचय प्राप्त नहीं कर लेता, उसे जान नहीं लेता, तब तक उसे और भी आगे बढ़ना ही पड़ेगा। भगवानका परिचय प्राप्त हो जाने पर ही विज्ञानकी प्रगति पूर्ण हो जायगी।

अपने रूसी भाईको यह समझना है कि क्या भौतिक शरीर भी कभी अमर हो सकता है? जो प्राकृतिक नियम चल रहे हैं, उन्हें कैसे बन्द किया जा सकता है? स्पुटनिकके सहारे मनुष्यको आकाश-मार्ग पर भेजनेके पहले जैसे कुत्तेको वहाँ परीक्षणके लिये भेजा गया था, उसी प्रकार मनुष्यको वैज्ञानिक ढङ्गसे अमर करनेके पहले यदि एक कुत्तेको अथवा एक चिंटी या आम-अमरूद जैसे कीड़े-मकोड़े या फलको अमर बना दिया जाता तो मैं मान लेता कि रूसी भाई सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु यह संभव नहीं है। एक फलको ही लीजिए, फल एक छोटेसे फूलसे पैदा होता है, धीरे-धीरे बढ़ता है, पूर्ण वृद्धि होने पर कुछ समय तक यों ही स्थित रहता है, फिर पकने

लगता है, पक जानेके पश्चात् सड़ने लगता है, एक दिन पेड़से अपने आप गिर पड़ता है और अंतमें मिट्टीमें मिल जाता है। परन्तु साथ ही अपने पीछे कुछ बीज अवश्यमेव छोड़ता जाता है। वही बीज आगे चल कर एक-एक विराट् वृक्ष बन जाते हैं जिनमें उसी प्रकारके हजारों-लाखों की संख्यामें फल पैदा होते हैं।

इसी प्रकार कोई भी प्राणी अपनी माताके गर्भ में धीरे-धीरे बढ़ता है, फिर पुष्ट होने पर गर्भसे बाहर निकल कर बढ़ता है, जवान होता है, बुढ़ा होता है, फिर जर्जर बन जाता है और अन्तमें एक दिन शरीरको छोड़कर चला जाता है। साथ ही अपने पीछे बाल-बच्चोंको छोड़ जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार फल अपने बीजको छोड़ा जाता है।

अस्तु, फल और मनुष्यके शरीर एक ही प्राकृतिक नियम द्वारा संचालित होते हैं। इन दोनों प्रकारके भौतिक शरीरोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। अतः कोई भी भौतिक वस्तु जिसका जन्म होता है, उसका मरण भी अनिवार्य है। अतएव रूसी भाई वैज्ञानिक पद्धतिसे मनुष्यको कैसे अमर बना सकेंगे, यह बात समझमें नहीं आती। रूसी वैज्ञानिक अटम बम बना कर मनुष्यको वैज्ञानिक ढंगसे मार सकते हैं, क्योंकि प्राकृतिक नियममें मृत्यु अनिवार्य है। परन्तु जब प्राकृतिक नियममें मृत्यु अनिवार्य है, तब उस अनिवार्य मृत्युको कैसे बदला जा सकता है ? यहीं पर भगवानकी भगवत्ता है। भगवानके नियमोंको कोई भी तोड़ नहीं सकता। हाँ चिकनी-चुपड़ी बातें बना कर मूर्ख लोगोंको या अज्ञ समाजको धोखा अवश्य दिया जा सकता है, उन्हें मूर्ख अवश्य बनाया जा सकता है।

रूसी भाई एक खिलौना—स्पुटनिकको आकाश-मार्गमें भ्रमण करा कर अज्ञ लोगोंकी वाहवाही या तालियोंकी गड़गड़ाहट तो ले सकते हैं, परन्तु वे यदि यह चाहें कि रातमें सूर्यको उदय करा देंगे तो उनकी इस पागलपनकी बातको हम नहीं मान सकते। मैं तो भगवान्‌को ही सबसे बड़ा इन्जिनीयर और वैज्ञानिक समझता हूँ, क्योंकि भगवान ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को अपनी शक्तिसे वायु मण्डलमें उड़ा रहे हैं।

भगवद्गीतामें स्वयं भगवान् कृष्ण कह रहे हैं—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम॥
गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥
(श्रीमद्गीता १५।१२-१३)

अर्थात् भगवानकी ब्रह्मज्योतिका एक प्रतिफलन सूर्य, चन्द्र और अग्निको प्रकाशित करता है। अतः भगवान् ही सारे विश्वको प्रकाशित कर रहे हैं। इस प्रकार भगवान् ही विश्व-ब्रह्माण्डमें अणु-परमाणुमें अन्तर्यामीके रूपमें स्थित है। वे अपने इच्छासे विश्व-ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं। जब भगवान्‌के सामने बड़े-बड़े देवताओंका भी कुछ नहीं चलता, फिर क्षुद्र मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि 'भगवान् कुछ नहीं हैं, विज्ञान ही सब कुछ है"—यह उनकी मूर्खताके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

एक-आध स्पुटनिक-खिलौना उड़ा कर यदि रूसी भाई सारे संसारसे वाह-वाही पा सकते हैं, तो जो भगवान्, एक नहीं बड़े-बड़े पहाड़ों और अगाध समुद्रोंके साथ करोड़ों-करोड़ों ग्रह-नक्षत्रोंको अनन्त कालसे नियमित रूपमें वायु मंडलमें उड़ा रहे हैं, उनकी महिमाका कितना सौगुना बार अधिक गान करना चाहिए। इसका अनुभव भगवान्‌का अनन्य भक्त हुए बिना कोई भी समझ नहीं पा सकता। यदि एक स्पुटनिक रूपी खिलौनाको उड़ानेके लिये इतने बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंके मस्तिष्क खरोचने पड़ते हैं, तो ख्याल कीजिए भगवानका मस्तिष्क कितनी बड़ी अचिन्त्य शक्तिसे सम्पन्न होगा। इस विषयमें आज

तक हमें नास्तिक समाजसे कोई सन्तोषजनक उत्तर न तो मिला है, न कभी मिल सकेगा।

नास्तिक समाज सृष्टि तत्त्वको मनमाने ढङ्गसे समाधान करनेकी चेष्टा करता है। उनके कुछ वाग्जाल इस प्रकार हैं—"ऐसा तो ठीक-ठीक कहना बहुत ही कठिन है," "हम लोगोंका अनुमान वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकता," "परन्तु यह संभव है कि," "सम्भवतः ऐसा नहीं भी हो सकता है"—इत्यादि ऐसी बातें करते हैं, जिससे यह स्पष्ट पता चलता है कि तथाकथित वैज्ञानिकोंका वागाडम्बर अधिकांश रूपमें मन की एक भावना मात्र है जिसमें हम यथार्थताकी तनिक भी उपलब्धि नहीं कर सकते। इस प्रकार आरोहवादके द्वारा हम किसी निश्चित सिद्धान्त तक कदापि नहीं पहुँच सकते हैं। परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता से हम प्रमाण दे सकते हैं कि इसी ब्रह्माण्ड में एक ऐसी स्पुटनिक है, जहाँ के निवासियोंकी आयु १००० × ४३०००००० × ३० × १२ × १०० (सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार) वर्षोंकी है। भगवद्गीता एक प्रामाणिक ग्रन्थ है जिसकी संसारके सभी देशोंमें मान्यता है। इसके अनुसार सारे भौतिक पदार्थ परिवर्तनशील एवं अस्थायी हैं। यद्यपि तत्त्वकी दृष्टिसे समस्त पदार्थ नित्य होने पर भी मायिक रूप अवश्य ही अस्थायी और परिवर्तनशील है उसका जन्म, स्थिति, क्षय और विनाश अवश्य ही है।

भौतिक वैज्ञानिकोंका ऐसा अनुमान है कि भौतिक आकाशके परे कोई वस्तु अवश्य है जो आश्चर्यजनक और अचिन्त्य है। परन्तु भगवद्गीतासे पता चलता है कि वह अचिन्त्य और आश्चर्यजनक आकाश ही सनातन धाम परव्योम अर्थात् श्रेष्ठ आकाश है जहाँ अनन्त कोटि वैकुण्ठ गोलोक आदि नित्यकाल वर्तमान हैं। भौतिक आकाशके समस्त पदार्थोंका नाश हो जाने पर भी सनातन आकाश एवं वहाँके असंख्य नित्य-धामसमूह नित्यकाल वर्तमान रहते हैं।

सनातन आकाश चिन्मय या ज्ञानमय है। वहाँ का चिन्मय तिनका मात्र ही जीव-सत्ता है। यही प्रत्येक जीवका स्वरूप है। जब तक वह चिन्मय तिनका किसी शरीरमें रहता है, तभी तक उस शरीर के जन्म, वृद्धि, स्थिति, क्षय, नाश आदि विकार हुआ करते हैं। परन्तु ज्योंही वह चिन्मय तिनका शरीरसे बाहर निकल जाता है, त्योंही शरीरका नाश हो जाता है और समस्त प्रकारके परिवर्तन बन्द हो जाते हैं। चिन्मय कण शरीरमें रहनेके कारण, बालकसे युवक, युवकसे प्रौढ़, प्रौढ़से वृद्ध—यह सब परिवर्तन होता रहता है। यह प्राकृतिक नियम सर्वत्र लागू है। अर्थात् चिन्मय वस्तु जड़के साथ मिलनेसे ही जड़का परिवर्तन दिखलायी पड़ता है, अन्यथा नहीं। सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड ही इसी नियमके आधार पर स्थित है। सूर्य-चन्द्रकी भाँति जो प्रकाण्ड २ करोड़ों वसुधाएँ उड़ रहीं हैं, उन सबमें भगवान ही अन्तर्यामीके रूपमें प्रवेशकर उनके जन्म, वृद्धि और स्थिति आदिका नियमन कर रहे हैं। एक-एक ब्रह्माण्डके चौदह विभाग हैं। इन विभागोंको भुवन कहते हैं। इस प्रकार करोड़ों-करोड़ों चौदह भुवनात्मक ब्रह्माण्डोंमें पृथक्-पृथक् विभुतियोंसे सम्बद्धित असंख्य वसुधाएँ विराजमान हैं। यह सारी रचना पूर्ण-चेतन भगवान की कारीगरी है। अतः विश्व ब्रह्माण्डका कोई रचयिता स्वीकार किये बिना यह सब कुछ केवल आश्चर्यमय ही वह जायगा। फिर तो वैज्ञानिक महोदय चिन्ता करते २ या तो पागल हो जायेंगे और नहीं तो सारी चिन्ताओंको छोड़ कर अंतमें निराश हो पड़ेंगे। परन्तु दूसरी तरफ यदि सृष्टिकर्त्ताको मान लिया जाय तो फिर सब प्रश्नोंका समाधान अपने आप हो जाता है अर्थात् जन्म, वृद्धि, स्थिति, क्षय, विनाश सम्बन्धी सारे प्रश्नोंका सम्पूर्ण रूपसे उत्तर मिल जाता है।"

मेरे इस पत्रको पढ़ कर मेरे रूसी भाई श्री जी गुरविक नं० ८ गोगल बौलिवासोल फ्लाट नं० ७८ मास्को जी. १६ यू. एस-एस. आर. से जो पत्र भेजा है उसका अनुवाद इस प्रकार है—

"प्रिय भक्ति वेदान्त स्वामीजी !

आपका पत्र मिला। इसके लिये आपका अत्यन्त आभारी हूँ। मैंने उसे विशेष उत्साहके साथ पढ़ा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा कि मैं किसी पिछली शताब्दीके व्यक्तिसे पत्रालाप कर रहा हूँ। मैं तो केवल इस बातपर हैरान हूँ कि धर्मके विषयमें आप किस आधार पर मुझसे तर्क करेंगे।

आपने तो मुझे सबसे पहला धक्का यह दिया है कि मैं एक काल्पनिक कहानी लेखक मात्र हूँ। इस लिये आपके दृष्टिकोणसे मैं यथार्थ वस्तुसत्ताको छोड़कर केवल मात्र अनुमानका ही आश्रय लेता हूँ। उसके पश्चात् आपने कतिपय बालकोचित विचारोंको मेरे निकट दार्शनिक विचारके रूपमें प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की है। जैसे, फूलसे फल पैदा होता है और माता-पितासे शिशु पैदा होता है तथा यह सब प्राकृतिक नियम है—ऐसा आपने मुझे समझाना चाहा है।

भक्ति वेदान्तजी ! मैं यह सब कुछ मानता हूँ। परन्तु इन्हीं बातों तक सीमित न रह कर मैं और भी आगे बढ़ना चाहता हूँ। मैं इस बातको समझना चाहता हूँ कि यह प्राकृतिक नियम क्या है ? यह कैसे बन गया ? प्रश्न कैसे हल किया जा सकता है ? इनमें कौनसी शक्ति है जो इसे चलाती है ? क्या यह सम्भव है कि इस प्राकृतिक नियमको तोड़-फोड़ दिया जाय ? और यदि हम इसे तोड़-फोड़ देते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया क्या हो सकती है ?

माध्याकर्षण शक्ति भी एक प्राकृतिक नियम है। इस नियम के अनुसार सभी पदार्थ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। हमने इस नियमको अच्छी तरहसे समझ लिया है। इस शक्तिकी कहाँ तक पहुँच है, हमने इस बातका भी पता लगा लिया है। साथ ही हमने यह भी दृढ़ निश्चय कर लिया है कि पदार्थ-वेग (Speed) ही इस शक्ति पर विजय प्राप्त कर सकता है। इसी पदार्थ-वेगके सहारे हम आकाश-मण्डलमें स्पुटनिक (कृत्रिम भू-उपग्रह) भेज रहे हैं; जिसको आप एक तुच्छ खिलौना बतला रहे हैं।

आपकी परिस्थिति अत्यन्त सोचनीय है, यह मैं समझता हूँ। आपके पूर्वजोंने बड़े सुख और आराम-के दिन बिताए हैं। साथ ही जब कभी भी युक्ति तर्क या विचारोंके सामने उनकी कुछ चलती नहीं थी, तब वे तलवारसे आक्रमण करते थे। आपके पूर्वज धार्मिक सम्प्रदायवालोंने नास्तिकोंको बिलकुल कमजोर बना दिया था। जहाँ भी सम्भव हुआ उनको अन्धकूपमें ढकेल दिया गया, उनके शरीर टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये और उन्हें अग्निमें जला दिया गया। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी आपको स्मरण रखना चाहिये कि संसारमें नास्तिकोंका संख्या अवश्य ही बढ़ती जायगी और विज्ञानका विजय डंका बजता ही जायगा।

क्या हमें यह समझाना पड़ेगा कि विज्ञानका विजय-डंका क्यों बज रहा है ? इसका एक ही कारण है। वह यह कि जनता वास्तविक रचनात्मक या ठोस कार्योंसे प्रभावित होती है, केवल बातोंसे नहीं। विज्ञान केवल बातें ही नहीं बनाता, बल्कि रचनात्मक कार्य कर रहा है और आधुनिक जनता उससे लाभ भी उठा रही है। विज्ञानने जनताको कृत्रिम भू-उपग्रह (स्पुटनिक), एयरोप्लैन, इञ्जिन, तरह-तरहकी मशीनें, मोटर गाड़ी, रेल, रेडियो, टेली-वीजन और सिनेमा आदि लाखों नवीन आश्चर्य-जनक वस्तुएँ दी हैं। यही नहीं इसने नाना प्रकारकी दवाएँ भी दानकी है, जिसने प्लेगको जगतसे मिटा दिया है और हैजे एवं चेचक आदिको बनवास दे रखा है। इसने बिजलीकी रोशनीसे जगतको जगमगा दिया है। कितना गिनाऊँ ?

परन्तु आप—भगवान्‌के प्रतिनिधियों और धर्मकी दुहाई देने वालोंने जनताको क्या दिया है ? कुछ नहीं और कुछ नहीं। दूसरी बात, विज्ञानसे क्या लाभ है—यह तो सबके सामने है, उसे बतलानेकी

आवश्यकता नहीं समझता । विज्ञानसे लाभके सम्बन्धमें कोई शङ्का नहीं है । विज्ञान द्वारा जो बातें निश्चितकी जाती हैं, वे क्रिया एवं गणनासे प्रमाणित की जाती हैं और फिर वे व्यावहारिक जीवनके काममें लायी जाती हैं । परन्तु आप लोग जो कहते हैं वह सब प्रमाण योग्य नहीं है । आपके जो भगवान् हैं, वे तो छोटे-छोटे बच्चों जैसे छिपा-चोरी या आँख मिचौनीका खेल खेलते हैं । वे अपनेको मनुष्य समाजसे दूर ही रखना चाहते हैं । वे मनुष्यको कभी भी दर्शन नहीं देते हैं । क्या आपके भगवान् आकाश के बादलोंके अन्दरसे मुझे दर्शन दे सकते हैं ? क्या भगवान् जोरसे पुकार कर ऐसा कह सकते हैं कि "देखो मैं इधर हूँ ।" क्या आप किसी भी ऐसे मरणशील व्यक्तिका नाम बतला सकते हैं जो पर-जगतमें आता जाता हो । आप तो केवल पुरानी पोथियोंको ही मुझे समझायेंगे । परन्तु इन पुरानी पोथियोंकी किसी बातको प्रमाणित नहीं कर सकेंगे ।

आप तो उन्हीं बातोंमें अटके रहेंगे, जिसका कोई भी प्रमाण नहीं है । आपका सारा पुरुषार्थ इसीमें है।

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि विज्ञानको अभी और भी आगे बढ़ना है, उसे अभी बहुत सी बातें मालूम नहीं हैं, उन सब रहस्योंका अभी पता लगाना है । कुछ ऐसी बातें हैं जिनको विज्ञान जानता है और कुछ ऐसी भी बातें हैं, जिनके जम्बन्धमें विज्ञान अनुमान करता है । विज्ञानके सम्बन्ध में एक बात स्मरण रखना चाहिये कि विज्ञान जिस विषय या तथ्यको नहीं जानता, उसे वह स्वीकार करता है, कि यह बात उसे ज्ञात नहीं है । परन्तु आप केवल पुराने रोगीकी भाँति बतलाते हैं कि देखो, यह भगवान् हैं और यह वैकुण्ठ है (?) परन्तु आप जो ऐसा बतलाते हैं, वह किस आधार पर बतलाते हैं ? यहाँ भी आप उन्हीं पुरानी पोथियों की ही दुहाई देते हैं । यह सब कुछ आप आध्यात्म-वादियोंकी धोखाबाजी के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं ।

विज्ञानकी ओर देखिए तो भला वह किस प्रकार से प्रगति कर रहा है ? वह प्राकृतिक नियमोंमें क्या क्या सूक्ष्म-सूक्ष्म खूबियाँ हैं, इसका अविष्कार कर रहा है । परन्तु खेदका विषय है, विज्ञानने अभी तक भगवानका कोई पता नहीं पाया । आप तो क्रमशः पग-पग पर पीछे हटते जा रहे हैं । आप लोग आकाश मार्गको तो खो ही चुके हैं और समुद्रतलमें तो पहुँच ही नहीं सकते । अब तो आपको मृत्युके साथ लड़ाई करनी है । जरा सोचिये तो सही, पर-जगत (Transcendental science) की बातें सुनाने वाले आप लोगोंकी क्या दुर्दशा होगी ? आप मुझे यह समझाना चाहते हैं कि हमलोगोंको मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेका प्रयत्न न करना चाहिए । आप जो ऐसा कह रहे हैं इसका कारण यह है कि आप-लोगोंका यही एकमात्र आश्रय और अस्त्र है जिसके आधार पर आप भगवानकी बातें सुना सकते हैं। आप तो मरते ही रहें और भगवानकी बातें सुनाते ही रहें, परन्तु हम विज्ञान द्वारा अवश्य अमर बन जायेंगे । आप बेकार पड़े रहें और हमलोग पुरुषार्थ दिखलाते ही जायेंगे । आप तो पुरानी पोथियोंसे केवल सुनाते ही रह जायेंगे और हम वास्तविक रच-नात्मक कार्य करते जायेंगे ।

क्या आप यह समझते हैं कि आधुनिक प्रगति-शील जगत आपकी बातोंमें आकर आपका अनुकरण करेगा ?

यद्यपि मैंने आपको यह पत्र व्यक्तिगतरूपमें दिया है, फिर भी मैं आपको अनुमति देता हूँ कि आप इस पत्रको अपनी पारमार्थिक समाचार पत्र "बैक् टू गौडहेड" में प्रकाशित कर सकते हैं । आपका सम्मान करते हुए—

—जी. गुरभिक"

श्री जी. गुरभिक महोदयके उपरोक्त पत्रका मैंने जो उत्तर दिया था उसका अनुवाद इस प्रकार है–

"प्रिय श्रीगुरभिक महोदय !

आपके पत्रके लिये धन्यवाद है । आपका पता जो लिफाफेके ऊपर लिखा था उसे ठीक-ठीक न समझ सकनेके कारण मैं भारतीय रूसी दूतावासके द्वारा यह पत्र भेज रहा हूँ । साथ ही आपकी सेवामें अपनी (Easy Journey to other planates" नामक पुस्तक भेज रहा हूँ ।

मैंने आपके पत्रको बड़े ध्यानसे पढ़ा । यदि मैं आपके पत्रका विस्तारपूर्वक अच्छी तरहसे उत्तर दूँ तो वह एक मोटा ग्रन्थ ही बन जायगा । अतः जहाँ तक हो सका है मैं संक्षेपमें आपके पत्रका उत्तर दे रहा हूँ ।

(क्रमशः)

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त स्वामी महाराज

संपादक—बैक् टू-गौडहेड

उपनिषद्-वाणी

(श्वेताश्वतर-६)

इस जगत्के कारणके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारके मत हैं । कुछ लोग स्वभावको ही जगत्का कारण बतलाते है । यह मत प्रकृतिवादियोंका है । कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि काल ही जगत्का कारण है; क्योंकि समय पर ही जगत्की उत्पत्ति होती है और समय पर ही उसका विनाश होता है । जैसे, समय पर ही वृक्ष में फल लगते हैं और फिर समय पर ही वे झड़ जाते हैं । परन्तु अपनेको पण्डित माननेवाले ये वैज्ञानिक मोहमें पड़े हुए हैं, इसलिये वे जगत्के वास्तविक कारणको नहीं जानते । वास्तवमें तो जगतकी विचित्र रचनाका कारण एकमात्र परमपुरुष परमेश्वर हैं । वे ही स्वभाव और काल आदि समस्त कारणोंके अधिपति हैं । उन्हींके द्वारा यह संसार-चक्र घुमाया जाता है । श्रीचैतन्यचरितामृतकार श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है कि जिस प्रकार चक्र, दण्ड और मट्टी—ये सब घट निर्माणके उपादान होने पर भी कुंभकारके बिना घट नहीं तैयार हो सकता, उसी प्रकार प्रकृति, काल और स्वभाव आदिकी क्रिया रहने पर भी मूल कारण परमेश्वरकी प्रेरणाके बिना कुछ भी संभव नहीं है । वे जगन्नियन्ता, सर्वाधार सर्वेश्वर इस सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र अवलम्बनके रूपमें वर्तमान हैं । यह सम्पूर्ण विश्व उन्हींके द्वारा व्याप्त है । वे सर्वज्ञ हैं, सर्वसद्गुणोंसे सम्पन्न हैं एवं चिन्मय हैं ।

वे परब्रह्म परमेश्वर समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर—सर्वेश्वर हैं । उनकी प्रेरणासे ही समग्र जगत्का नियमन और संचालन होता है । वे ही समस्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं । परमेश्वरने ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश आदिको कार्य-करण-शक्ति प्रदान कर इस विचित्र जगतकी रचना की है । उनकी शक्तिके बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं था । परमेश्वर अपनी प्रकृतिके प्रति ईक्षण करके सत्त्व, रज और तमोगुण, मन, बुद्धि, अहङ्कार और पंचभूत आदि द्वारा जीवात्माका संयोग कराके उन्हें जगत्में भ्रमण करा रहे हैं । जो जीव सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे व्याप्त अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थितिके अनुकूल कर्तव्य कर्मोंका आरम्भ करके उनको और अपने सब प्रकारकी अहंता, ममता, आसक्ति आदि

भावोंको छोड़करश्रीभगवानके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण कर देता है, उसके संचित कर्म-संस्कारोंका सर्वथा नाश हो जाता है और अन्तमें परमात्माको प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाता है। यह जीवात्मा वास्तव में जड़ तत्त्व-समुदायसे सर्वथा भिन्न एवं अत्यन्त विलक्षण है; उनके साथ इसका सम्बन्ध अज्ञानजनित अहंता और ममता आदिके कारण ही है। इनका नाश होने पर संसारका नाश हो जाता है।

समस्त जगत्के आदि कारण सर्वशक्तिमान परमेश्वर तीनों कालोंसे अतीत हैं। वे सोलह कलाओंसे रहित अर्थात् संसारसे सर्वथा सम्बन्ध रहित होते हुए भी प्रकृतिके साथ जीवका संयोग करानेवाले कारणोंके भी कारण हैं। यह बात इस रहस्यको जाननेवाले महापुरुषोंद्वारा देखी गयी है। उन्हें ढूढ़नेके लिये दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। वे हमारे हृदयमें ही स्थित हैं। इस बात पर दृढ़ श्रद्धा करके सब प्रकारसे सबके आधार परमेश्वरकी उपासना करनेसे ही उनका साक्षात्कार हो सकता है। उनकी अचिन्त्य-शक्तिके द्वारा संसार-चक्र निरन्तर घूम रहा है। परन्तु वे संसार-वृक्ष, काल या प्रकृति आदिसे भिन्न हैं, इन सबसे परे हैं। वे धर्मवृद्धि, पाप-नाशादि सबके कारण हैं, सम्पूर्ण ऐश्वर्यके अधिपति एवं समस्त जगत् के आधार हैं। उनको अपने हृदय-प्रदेशमें जान लेने पर अमृत-स्वरूपकी प्राप्ति होती है।

वे परब्रह्म पुरुषोत्तम समस्त लोकपालोंके भी ईश्वर—शासक हैं, इसीलिये उनका नाम 'महेश्वर' है। वे समस्त देवताओंके भी परम आराध्य हैं, समस्त पतियोंके —रक्षकोंके भी परम पति हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डके स्वामी हैं। वे स्तुति करनेयोग्य प्रकाश-स्वरूप परमदेव परमात्मा सबसे श्रेष्ठ हैं; अतएव सबके पूज्य हैं।

उन परब्रह्म परमात्माके कार्य और कारण अर्थात् प्राकृत शरीर और इन्द्रियाँ नहीं हैं। उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं है। उन परमेश्वरकी ज्ञान, बल और क्रियारूप विविध प्रकार की शक्तियाँ वर्तमान हैं। इस जगतमें कोई भी उन परमात्माका स्वामी नहीं है। सभी उनके सेवक हैं। उनका कोई शासक भी नहीं है, सभी उनके शासनके अधीन हैं। जगत्में उनका कोई चिह्न भी नहीं है। परन्तु वे समस्त कारणोंके कारण हैं। इन्द्रियोंके अधिपति और अधीश्वर हैं। कोई भी उनका जन्मदाता और अधीश्वर नहीं है।

जिस प्रकार मकड़ी अपनेसे प्रकट किये हुए तन्तु-जालसे स्वयं आच्छादित हो जाती है—अपनेको छिपा लेती है, उसी प्रकार परमेश्वर अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभावसे अनन्त जगतोंकी सृष्टि करके उसमें अपने को छिपा रखे हैं। इसीलिये संसारी लोग उनको देख नहीं पाते। वे परमेश्वर कृपा करके हमें अपना तत्त्व दिखलावें।

वे एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें छिपे हुए हैं। वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वे सबके कर्मफलदाता हैं तथा समस्त प्राणियोंके निवास स्थान—आश्रय हैं। वे ही सबके साक्षी—शुभाशुभ कर्मको देखनेवाले चेतन-स्वरूप, सबको चेतना प्रदान करने वाले सर्वथा विशुद्ध अर्थात् निर्लेप और निर्गुण तत्त्व हैं।

वे विशुद्ध चेतन स्वरूप परमेश्वर वशी (शासक) हैं। वे प्रकृतिरूप बीजको अनन्त रूपोंमें प्रकाशित करते हैं। अर्थात् महत्तत्त्व, अहङ्कार तत्त्व, पंचभूत आदि समस्त कारणोंको प्रकाशित करते हैं। उन हृदयस्थित परम पुरुषका जो निरन्तर दर्शन करते हैं, वे धीर पुरुष ही शाश्वत सुखके अधिकारी हैं; दूसरों को जो सांसारिक सुख-भोगोंकी कामना करते हैं, वैसा सुख नहीं प्राप्त होता।

नित्य चेतन—जीवात्माओंमें नित्यस्वरूपमें वर्तमान जो नित्य-चेतन सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमात्मा अकेले ही सब जीवोंके कर्मफल आदिका विधान

करते हैं, उन सांख्य-योगगम्य सर्वकारण कारण पुरुषके सम्बन्धमें ज्ञान लाभ करने पर सब प्रकारके बन्धनोंसे सदाके लिये छुटकारा मिल जाता है।

उनके धाममें सूर्य, चन्द्र, तारागण या बिजली प्रकाश नहीं प्रदान करते। सूर्य-चन्द्रादिका प्रकाश तो केवल तीनों लोकोंमें ही है। परन्तु उस परमज्योतिर्मय चित्-सूर्यके प्रकाशसे ही प्रकाशित होकर ही सूर्य और चन्द्र जगतको आलोकित करते हैं।

इस ब्रह्माण्डमें जो एक प्रकाशस्वरूप परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं, वे ही जलमें प्रविष्ट अग्नि हैं। इस अग्निका नाम वाड़वाग्नि है। उनको जाननेसे संसार-समुद्रको पार हुआ जा सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं है जिससे मृत्युको पार किया जासके, वे परमेश्वर विश्वके रचयिता हैं, सर्वान्तर्यामी हैं और स्वयं ही अपनेको प्रकट करनेवाले हैं। दूसरा कोई उनको प्रकट नहीं कर सकता। वे कालके भी काल हैं। वे सौहार्द, प्रेम, दया आदि समस्त कल्याणमय दिव्यगुणोंसे युक्त हैं। वे समस्त जीवोंके तीनों-कालोंमें घटित शुभाशुभ कर्मोंके ज्ञाता हैं तथा प्रकृति और जीवोंके स्वामी हैं। वे सत्त्व आदि गुणोंके भी नियामक हैं; वे ही जीवोंके संसार-बन्धन, स्थिति और मोक्ष सब कुछके हेतु हैं। उनकी कृपासे ही जीव मुक्त हो सकता है। वह परमेश्वर तन्मय स्व-स्वरूपमें स्थित, अमृतस्वरूप और सदा एकरस रहते हैं; जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदिके समय भी उनका कोई परिवर्तन नहीं होता। वे समस्त ईश्वरों अर्थात् लोकपालोंके भी अन्तर्यामी हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परम पुरुष जगतका संचालन आदि कार्य अकेले किया करते हैं; दूसरे किसी की भी वैसी योग्यता नहीं है। वे सृष्टिसे पूर्व ब्रह्माको पैदाकर उनमें समस्त वेदका ज्ञान प्रकाश करते हैं; अतएव उन आत्मबुद्धि प्रकाश करनेवाले परमेश्वरकी शरण लेना ही साधकों का कर्तव्य है। जो संसार सम्बन्ध-रहित, क्रिया शून्य, परम शान्त, सर्वदोष रहित, अमृतस्वरूप, मोक्षके सेतु (जिनका आश्रय लेनेसे सहज ही मुक्त हुआ जा सकता है) हैं एवं जो ज्वलंत अग्निकी भाँति निर्मल प्रकाश स्वरूप हैं, उन परम तत्त्वका हम ध्यान करते हैं।

जिस प्रकार आकाशको चमड़ेकी भाँति लपेटना मनुष्यके लिये सर्वथा असंभव है, सारे मनुष्य मिलकर भी इस कार्य को नहीं कर सकते, उसी प्रकार परमात्माको जाने बिना कोई भी जीव इस दुःख समुद्रसे पार नहीं हो सकता। अतः मनुष्यको दुःखोंसे सर्वथा छूटने और परमानन्दकी प्राप्तिके लिये परमात्मा को जाननेके साधनमें तीव्र इच्छासे लग जाना चाहिए।

श्वेताश्वतर ऋषिने तपके प्रभावसे अर्थात् समस्त विषय-सुखका त्याग करके निरन्तर परमात्माके चिन्तन में लगे रह कर उन परमदेव परमेश्वरकी अहैतुकी दयासे उन्हें जान लिया था। फिर उन्होंने ऋषि-समुदायसे सेवित—उनके परम लक्ष्य इस परम पवित्र ब्रह्मतत्त्वका आश्रमके अभिमानसे सर्वदा रहित देहाभिमान शून्य अधिकारियोंको भलीभाँति उपदेश किया था।

यह परम रहस्यमय ज्ञान पूर्वकल्पमें भी वेदके अन्तिम भाग—उपनिषदोंमें वर्णित हुआ था। भाव यह कि इस ज्ञानकी परम्परा कल्प-कल्पान्तरसे चली आती है, यह कोई नयी बात नहीं है। इसका उपदेश केवल उन्हींको दिया जाय जिनका अन्तःकरण विषय-वासनाओंसे रहित हो गया हो। परन्तु वैसी अवस्था प्राप्त हुए बिना पुत्र और शिष्य भी उस ज्ञानके अधिकारी नहीं हैं। जिस साधककी परमदेवमें परमभक्ति होती है तथा जिस प्रकार परमेश्वरमें होती है उसी प्रकार अपने गुरुमें भी होती है; उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरोंके हृदयमें नहीं।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

श्यामकी छवि

काली घटाएँ छा रहीं लेकर सलील,
व्रजबिहारी को निहलाने बरसने को,
रूप था घनश्याम सम उनका निराला,
सोहती थीं नीरले घट वपु वारने को ॥

नीलमणिकी सुन्दर छटा कलियों को लजाती,
नीरख शोभा गोपियाँ सर्वस्व अपना वारती,
त्रिभंग सुन्दर वेश बंशी अरुणाधर पै राजती,
ठहर जाती थीं वहीं आखें जहाँ वे हेरती ॥

कटिमें कसी थी फेंट पीली ओढ़नी वह,
कर्णमें वनकी लता वक्ष अंकित था बहु,
मालिका मणियों जड़ित थी शोभती हरि,
रूप मोहित कर रहा था काम के वपु ॥

वनविहारी रूप नटवर सा सजा था,
नीरख वह छवि यकायक मन लुभाता,
अंतर खिचा जाता था विहारीका सरूप लख,
हो अधीर धीर त्याग मिलनेको तड़फड़ाता ॥

त्याग, तृण गाएँ स्वरूप निहारती थीं,
आँखें लगी टकटकी सी देखे विहारी को,
प्यास भूख विलीन कब की हो चुकी थी,
लख कर पियारे नन्दसुतकी छवि सलोनी ॥

चपलता दृगोंमें बसी घनश्याम के बहु,
निकल कर मन हरण करती थी सभी का,
भूल जाते दुःख सभी लख श्याम छवि को,
अंतर बसी रहती, नहीं टालते टलती कभी ॥

—श्रीसत्यपाल ब्रह्मचारी

"शृणु मे परमं वचः"

अर्जुनके प्रति गुह्यसे भी गुह्यतर उपदेश करनेके पश्चात् उपसंहारमें भगवान् श्रीकृष्ण सर्वगुह्यतम उपदेश करते हुए कह रहे हैं—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
(गीता १८।६४)

—पार्थ ! अब मैं तुमको पहले कहे गये समस्त गुह्योंमें भी गुह्यतम् और सर्वश्रेष्ठ उपदेश सुना रहा हूँ । तुम मेरे परम मित्र और परम अनुरक्त हो, इसीलिये तेरे हितकी बात कहूँगा ।

श्रीगीताशास्त्र समस्त विद्याओंकी शिरोमणि है । यह शास्त्र तीन भागोंमें विभक्त है—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग । पहले छः अध्यायोंमें निष्काम कर्मयोगका वर्णन है, दूसरे छः अध्यायोंमें भक्तियोग का तथा तीसरे छः अध्यायोंमें ज्ञानयोगका है । भक्तियोग ही निष्काम कर्मयोग तथा ज्ञानयोगका संजीवक है । इसीलिये भक्तियोग मध्यमें स्थित है । गुह्य उपदेश—निष्काम कर्मयोगका तथा गुह्यतर उपदेश—ज्ञानयोगका उपदेश देनेके पश्चात गुह्यतम उपदेश भक्तियोगका उपदेश करते हुए कह रहे हैं—"मन्मना भव"-इति मद्भक्तः सन्नेव मां चिन्तय, न तु ज्ञानी, योगी वा भूत्वा मद्ध्यानं कुर्वित्यर्थः । (चक्रवर्ती टीका) ।

अर्थात् हे पार्थ । तुम मेरे भक्त होकर मुझको ही चित्त अर्पण करो—मेरा ही चिन्तन करो । कर्मयोगी, ज्ञानयोगी या ध्यानयोगी जिस प्रकारसे मेरा चिन्तन या ध्यान कहते हैं, वैसा न करो । "लाभो मद्भक्तिरुत्तमः (भागवत)—मेरी शुद्धभक्ति लाभ करना ही सर्वोत्तम लाभ है । केवल भक्तियोगसे ही आत्माकी सुप्रसन्नता होती है । इसी विशुद्ध भक्तियोगका संकेत श्रीकृष्णने "परमं वचः" से किया है । भक्तियोग ही पराविद्या है । भक्तियोगके सम्बन्धसे रहित विद्याका नाम ही अपरा विद्या है । भगवानकी लीलाकथाओंके अतिरिक्त ग्राम्य कथाओंको इतर-कथा कहते हैं । यह भी अपरा-विद्याके अन्तर्गत है । इतर कथाओंकी चर्चा करनेसे अहित होता है । जिस प्रकार दादुर टर्र-टर्रका शोर मचाकर व्यर्थ ही अपनी आयुको गवाँ देता है (उसका शोर सुनकर साँप वहाँ पहुँचकर उसे खा जाते हैं); उसी प्रकार मनुष्य पुत्र-परिवार, धन सम्पत्ति, साधारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन इतर कथाओंकी चर्चा द्वारा अपनी आयुका व्यर्थ ही नाश करते हैं ।

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ।
तस्यर्ते यत्क्षणोनीत उत्तमः श्लोक वार्त्तया॥
(श्रीमद्भागवत २।३।१७)

जिसका समय भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंके गान अथवा श्रवणमें व्यतीत हो रहा है, उसके अतिरिक्त सभी मनुष्योंकी आयु व्यर्थ जा रही है। ये सूर्य देवता अपने उदय और अस्तसे उनकी आयु छीनते जा रहे हैं ।

क्षण भरका समय भी व्यर्थ गँवाना उचित नहीं, क्योंकि केवल क्षण भरके भक्तियोगसे सारी आयु सफल हो सकती है । इसका उदाहरण महाराज खट्वांग हैं । उन्होंने क्षणभरके भक्तियोगसे वैकुण्ठगति पा ली थी । भक्तियोगका अनुशीलन किये बिना मनुष्यका जीवन व्यर्थ है; वैसे जीवनको शास्त्रों में पशुजीवन कहा गया है । महात्मा सूरदास भी सूर-सागरमें कहते हैं—

भजन बिनु कूकर- सूकर जैसौ ।
जैसें घर बिलावके मूसा, रहत विषय-बस वैसौ ॥

बग-बगुली अरु गीध-गीधनी आई जनम लियो तैसौ।
उनहूँ कैं गृह सुत दारा है, उन्हैं भेद कहु कैसौ॥
जीव मारि कै उदर भरत हैं, तिन कौ लेखौ ऐसौ।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु, मनौ ऊँट, वृष, भैसौ॥
—सूरदास

अपरा विद्याका अनुशीलन करनेवाला दुष्कृत् अर्थात् दुष्टव्यक्ति कहलाता है। "दुष्कृतिनो दुष्टाश्च ते कृतिनः।" पण्डित होने पर भी भगवानकी शरण स्वीकार न करनेके कारण कुपण्डित हैं। ऐसे दुष्ट व्यक्ति चार प्रकारके हैं—

(१) मूढ़—जो भगवान्‌की लीला-कथाओंका कीर्त्तन छोड़कर इतर कथाओंका अनुशीलन करते हैं तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी वासना रखते हैं; वे मूढ़ हैं।

(२) नराधम—जो कुछ समय तक भक्तियोगका आश्रय कर पुनः उसकी अवज्ञा कर तुच्छ कर्म-काण्ड या ज्ञानकाण्डका आश्रय कर भक्तियोगसे पतित हो पड़ते हैं। ये लोग भक्तियोग अवलम्बनपूर्वक मनुष्यत्वकी प्राप्ति कर लेने पर भी स्वेच्छापूर्वक उससे हट जाने से वे नराधम कहलाते हैं।

(३) अपहृतज्ञान—जो चिद्वस्तुको स्वीकार करके भी केवलाद्वैतवाद, शून्यवाद या प्रकृतिवाद आदि माया-भ्रमद्वारा दुष्ट मतोंका आश्रय कर शुद्ध-भक्तितत्त्वकी नित्यता स्वीकार नहीं करते हैं वे अपहृत-ज्ञान कहलाते हैं।

(४) असुर—जो ब्रह्मवादी होते हुए भी श्रीभगवानके अवतारोंकी नित्यता स्वीकार नहीं करते और भगवानकी मूर्त्तिको प्राकृत बतलाते हैं। जैसे, जरासन्ध, शिशुपाल आदि।

ये चार प्रकारके दुष्टलोग भक्तियोगका आश्रय नहीं करते। भक्तियोग सर्व गुह्यतम तत्त्व है। भगवान् किसीको सहज ही अपनी भक्ति नहीं देते, बल्कि मुक्ति देकर अपना पीछा छुड़ा लेते हैं—'मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् (भागवत)। भक्ति एकमात्र महत् कृपा द्वारा ही प्राप्त होती है; भक्ति मुक्तिको लघु कर देती है।

भगवान् श्रीकपिलदेवजी कहते हैं कि मेरे भक्त मेरी सेवाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते। और तो क्या मुक्तिको भी वे ठुकरा देते हैं। शुद्ध भक्तोंकी प्रार्थना इस प्रकारकी होती है—

न धनं न जनं सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥
(शिक्षाष्टकका तीसरा श्लोक)

हे जगदीश! मैं धन, जन, कामिनी, काव्य अथवा पाण्डित्यकी कामना नहीं करता। आपके चरणकमलोंके प्रति मेरी जन्म-जन्मान्तरमें अहैतुकी भक्ति हो।

आस्वाद्यं प्रमदारदच्छदमिव श्रव्यं नवं जल्पितं
बालाया इव दृश्यमुत्तमवधूलावण्यलक्ष्मीरिव।
प्रोद्घोष्यं चिरविप्रयुक्तवनिता-सन्देशवाणीव मे
नैवेद्यं चरितं च रूपमनिशं श्रीकृष्ण! नामास्तु ते॥
(पद्यावली)

कोई भक्तराज कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण! आपका प्रसाद, आपका विशुद्ध चरित, आपका निखिलभुवन मोहन रूप और नन्दनन्दन इत्यादि आपके अनन्त नाम, ये चारों वस्तुएँ मेरी इस प्रकार सेवनीय हो जाँय कि कामीजन जिस प्रकार बारम्बार स्वाद ले-लेकर कामिनीके अधरामृतका आस्वाद लेते हैं, उसी प्रकार भावपूर्वक आपके प्रसादका सेवन किया करूँ। और लज्जाशील नव-विवाहिता बालिकाके वचनोंको जैसे उसका पति बड़े प्यारसे सुनता है, उसी प्रकार आपके मङ्गलमय चरित्रोंको बड़े ध्यान एवं गौरवसे सुना करूँ। और जैसे परमसुन्दरी नव विवाहिता व्याहुलीके मुख-सौन्दर्यको देखनेके लिये सभी नाग-

रिक नर-नारी लालयित रहते हैं; उसी प्रकार मैं लोकोत्तर सुन्दर आपके रूपका नखशिख दर्शन किया करूँ। और जैसे अपने पतिसे बहुत दिनसे बिछुड़ी हुई सती वनिता अपने पतिके द्वारा प्राप्त सन्देशको बारम्बार अपनी अन्तरंग सखियोंसे कहती है, एवं उसी पति-संदेशको पुनः उन सखियोंके मुखसे सुन कर हृदयमें प्रसन्नता अनुभव करती है, उसी प्रकार मैं आपके अनन्य सेवकोंके सामने आपका मधुर नाम कीर्तन किया करूँ एवं नाम-रसिक उन भक्तोंके श्रीमुखसे श्रवण किया करूँ। यही मेरी आपके श्रीचरणोंमें विनम्र प्रार्थना है, स्वीकार कीजिए प्रभो!

—श्रीहरिकृपादास ब्रह्मचारी 'भक्तिशास्त्री

सुन्दरवन-अंचलमें श्रीआचार्यदेव

सुन्दरवन स्थित आई प्लाट अष्टमखण्ड अञ्चल के अधिवासियोंके सादर आह्वान पर परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रीआचार्य देवने वहाँ पधार कर गत १८ जूनसे २१ जून तक वहाँ आयोजित धर्म-सभाओंमें अध्यक्षका पद अलंकृत कर 'वर्तमान धर्म-जगत्की अवस्था' 'धर्मकी आवश्यकता' एवं 'सनातन धर्म'—के सम्बन्धमें बड़े ही ओजस्वी और पाण्डित्य पूर्ण भाषण दिये हैं।

समितिके विशिष्ट प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त मुनि महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीयुत भगवानदास ब्रह्मचारी, श्रीयुत चिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीयुत गजेन्द्र मोचन ब्रह्मचारी, श्रीयुत स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी, श्रीयुत कृपासिन्धु ब्रह्मचारी एवं श्रीयुत सुदर्शन ब्रह्मचारीने श्रीश्रीआचार्य देवका अनुगमन किया था।

गत १८ जूनकी सभामें श्रीआचार्देवके सभापतित्वमें त्रिदण्डिस्वामी मुनि महाराजजीने 'मनुष्य जीवनके कर्त्तव्य' के सम्बन्धमें भाषण दिया तथा त्रिदण्डि स्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और श्रीसुदर्शन ब्रह्मचारीने 'धर्म जीवनकी आवश्यकता' के सम्बन्धमें। दूसरे दिन १९ जूनको पुनः आचार्य देवकी अध्यक्षतामें श्रीयुत भगवानदास ब्रह्मचारी, श्रीयुत गजेन्द्र मोचन ब्रह्मचारी और श्रीयुत चिद्घनानन्द ब्रह्मचारीने 'जीवका स्वरूप' एवं 'जीवका चरम प्रयोजन क्या है?'—विषयोंके सम्बन्धमें भाषण दिये। २० जूनको श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारीजीने श्रीमद्भागवतका प्रवचन किया, उनका प्रवचन सुनकर श्रोतृमण्डली बड़ी मुग्ध हुई है। २१ जूनको सभास्थलमें अनेक सज्जन महोदयोंने अनेकों प्रश्न किये, जिनका श्रीआचार्य देवने बड़े ही सुन्दर और सहज ढङ्गसे उत्तर देकर समाधान किया। इससे सारी जनता बड़ी आकर्षित हुई।

२८ जूनको श्रीआचार्य देव दल-बलके साथ काशी नगर पधारे और वहाँ पर २२ और २३ जून—दो दिनों तक शुद्ध भक्तिका प्रचार कर २४ जूनको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चूँचूड़ामें पधारे हैं।

—निजस्व संवाददाता

सम्पूर्ण भारतके तीर्थोंके दर्शनका

अपूर्व-सुयोग

[एक साथ सात मोक्षदायिका पुरियों, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध देव-मंदिरों एवं तीर्थ-स्थानोंके दर्शन, तीन धामोंकी परिक्रमा और तीर्थ-स्नान आदिका विराट आयोजन]

दर्शनीय स्थानोंके नाम

(१) पुरी, (२) सिंहाचलम, (जियड़ नृसिंह,) (३) कबुर (राय रामानन्द और श्रीचैतन्य महाप्रभुका मिलन-स्थान), (४) मङ्गलगिरि (पाना-नृसिंह) (५) मद्रास, (६) चिंगलपुट (पक्षीतीर्थ), (७) चिदाम्बरम् (नटराज), (८) शियाली, (९) मायाभरम्, (१०) कुंभकोणम्, (११) पापनाशम्, (१२) तांजौर, (१३) रामेश्वर, (१४) धनुष्कोटि, (१५) मदुरा, (१६) कन्याकुमारी, (१७) श्रीरङ्गम्, (१८) विष्णुकाञ्ची, (१९) शिवकाञ्ची, (२०) तिरुपति (श्रीयालाजी), (२१) पंढरपुर, (२२) नासिक, (२३) बम्बई, (२४) ब्रोच (महाराज बलिसे भगवान वामनदेवकी भिक्षा माँगने का स्थान), (२५) प्रभास (भिरामेल), (२६) पोरबन्दर (सुदामापुरी), (२७) द्वारका, (२८) बेटद्वारका, (२९) डाकोर, (३०) अवन्तिका, (३१) नाथद्वार, (३२) आजमेर, (३३) पुष्कर, (३४) सावित्री, (३५) जयपुर, (३६) मथुरा, (३७) गोकुल, (३८) वृन्दावन, (३९) राधाकुण्ड, (४०) गोवर्द्धन, (४१) बरसाना, (४२) नन्दगाँव, (४३) दिल्ली (हस्तिनापुर), (४४) कुरुक्षेत्र, (४५) भद्रकाली, (४६) हरिद्वार, (४७) हृषिकेष, (४८) नैमिषारण्य, (४९) अयोध्या, (५०) प्रयाग, (५१) काशी, (५२) गया। पुनः हावड़ा (कलकता) लौटना।

जाने-आनेका रेल-किराया, रिजर्व गाड़ीके ठहरने आदिका किराया, कुली, मोटर-बास और निवास-स्थान आदिका किराया, बाल्यभोग और दोनों समयोंमें प्रसाद-सेवा आदि खर्चोंके लिये प्रत्येक यात्रीको कुल ४५०) भिक्षा-स्वरूप देना होगा। ३० भाद्र, १६ सितम्बर १९६१ ई० को हावड़ा स्टेशनके १२ नं० के प्लेटफार्मसे रात ८ बजे स्पेशल रिजर्व गाड़ी छूटेगी। यात्रीगण दिनके ३ बजेके भीतर ही हावड़ाके उक्त प्लेटफार्म उपस्थित होकर व्यवस्थापकोंसे भेंट करेंगे। इस परिक्रमामें लगभग दो माहका समय लगेगा। विशेषकारणवश स्थान-काल आदिका परिवर्तन हो सकता है।

श्रीगौड़ीय पत्रिका आफिस, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पो० चूँचूड़ा (हुगली) के पते पर पत्र व्यवहार करें।

———

श्रीगौड़ीय-व्रतोपवास

श्रावण

२०	वामन,	२	श्रावण,	१८	जुलाई,	मङ्गलवार—हेरा-पंचमी, श्रीलक्ष्मी विजय
२४	,,	६	,,	२२	,,	शनिवार— श्रीजगन्नाथदेवकी पूर्णयात्रा, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चूचूड़ामें रथ-यात्रा महोत्सवकी समाप्ति।
२६	,,	८	,,	२४	,,	सोमवार— शयन एकादशीका उपवास।
२७	,,	९	,,	२५	,,	मङ्गलवार—पूर्वाह्न ८-२० के भीतर एकादशीका पारण।
२९	,,	११	,,	२७	,,	बृहस्पतिवार—पौर्णमास्यारम्भपक्षे चातुर्मास्यव्रत आरम्भ। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके लिये आजसे ही चातुर्मास्य व्रतारम्भ श्री सनातन गोस्वामीका तिरोभाव। श्रीगुरुपूर्णिमा और श्रीव्यासपूजा।
१	श्रीधर	१२	श्रावण	२८	जुलाई,	शुक्रवार—गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीजीका तिरोभाव।
५	,,	१६	,,	१	अगस्त,	मङ्गलवार—श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीका तिरोभाव।
८	,,	१९	,,	४	,,	शुक्रवार—श्रीलोकनाथ गोस्वामीका तिरोभाव।
११	,,	२२	,,	७	,,	सोमवार— कामिका एकादशीका उपवास।
१२	,,	२३	,,	८	,,	मङ्गलवार—पूर्वाह्न ९।३२ के भीतर एकादशीका पारण।
१९	,,	३०	,,	१५	,,	मङ्गलवार—श्रीवंशीदास बाबाजी महाराजका तिरोभाव।

श्रीरथ-यात्रा महोत्सवका आह्वान

गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीसच्चिदानन्द भक्ति-विनोद ठाकुरके तिरोभाव एवं श्रीश्रीजगन्नाथ देवकी रथ-यात्राके उपलक्ष्यमें गत २७ आषाढ़, १२ जुलाई, बुधवारसे एकादश दिवसव्यापी प्रवचन, भाषण, संकीर्तन, रथ-यात्रा आदिका विराट अनुष्ठान चल रहा है। यह अनुष्ठान अगले ६ श्रावण, २२ जुलाई तक चलेगा। धर्म-प्राण सज्जन महोदय इस शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें सबान्धव योगदान करेंगे-प्रार्थना है।

—समितिके सभ्यवृन्द